# पुराण साहित्य में पर्यावरण संरक्षण

**डॉ. रीतिका जैन**

पर्यावरण शब्द परि+आवरण इन दो शब्दों से मिलकर बना है। पर्यावरण का अर्थ है– चारों ओर से घिरा हुआ। विश्व का प्रत्येक प्राणी अपने चारों ओर के वातावरण अर्थात् बाह्य जगत पर आश्रित रहता है। इस प्रकार पर्यावरण शब्द के अन्तर्गत व्यक्ति, परिवार, समाज, ग्राम, नगर, प्रदेश, देश, विश्व तथा सम्पूर्ण सौर मण्डल में होने वाली परिस्थितियाँ शक्तियाँ तथा क्रिया–कलापों की गणना की जाती है। इस परिधि में वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी तथा समस्त दिशायें, पर्वत, मेघ, वृक्ष, औषधि, वनस्पति, पशु आदि पदार्थ समाहित है। आकाश, जल, वायु, भूमि और अग्नि पर्यावरण के प्रमुख घटक हैं। इन घटकों के पारस्परिक व्यवहार द्वारा प्रकृति का निरन्तर सन्तुलन बना रहता है। यदि कोई भी घटक सीमा के बाहर निरन्तर उपयोग में आता है तो पर्यावरण में असन्तुलन होने लगता है इसी प्राकृतिक असन्तुलन का नाम प्रदूषण है। इसे दूसरे शब्दों में इस प्रकार कहा जा सकता है कि प्राकृतिक तत्त्वों या पदार्थों की आनुपातिक साम्यावस्था में किन्हीं कारणों से नकारात्मक दिशा (क्योंकि परिवर्तन तो प्रकृति का नियम है किन्तु जब ये परिवर्तन हानिकारक दिशा) में होने वाला परिवर्तन ही प्रदूषण है।

जगत् उत्पत्ति काल से ही पर्यावरण–संरक्षण का प्रादुर्भाव हुआ। मानव द्वारा सर्वप्रथम श्वास लेकर छोड़ते समय तथा मल–मूत्र एवं पसीने का त्याग करते ही प्रदूषण का आरम्भ हुआ। प्रदूषण की अवधारणा आज की हो सकती है किन्तु इसकी स्थिति प्रकृति के गर्भ से ही है। पर्यावरण के महत्त्व को समझकर ही उसके कोप से होने वाले भीषण परिणाम की कल्पना कर विश्व–शान्ति की भावना रखते हुये शान्ति–पाठ किया गया कि द्युलोक, अन्तरिक्षलोक और पृथ्वी लोक तथा जल, औषधियाँ और वनस्पतियाँ देने वाली हों, समस्त देवता, ब्रह्म और सब कुछ शान्तिप्रद हो। निरन्तर शान्ति का अनुभव हो।[1]

संस्कृत साहित्य में वैदिक काल से वर्तमान तक हो रहे साहित्य सृजन में किसी न किसी रूप में पर्यावरण की चर्चा मिलती है। वेदों, उपनिषदों, ब्राह्मण–ग्रन्थों, स्मृतियों, रामायण, महाभारत, नाटक, पुराणों आदि में पृथ्वी, जल, वायु, आकाश, चन्द्र और सूर्य की उपासना का प्रावधान मिलता हैं यहाँ पुराणों में पर्यावरण संरक्षण की धारणा को ग्रहण किया है।

संरक्षण का अर्थ है–उत्तरदायित्व या जिम्मेदारी के साथ किसी की देखभाल करना या निगरानी करना। संस्कृत व्याकरण की दृष्टि से 'संरक्षण' शब्द की व्युत्पत्ति 'रक्ष्' धातु में 'सम्' उपसर्ग पूर्वक 'लयुट्' प्रत्यय के संयोग से हुई है। इसका अर्थ है–प्ररक्षण, संधारण, उत्तरदायित्व तथा निगरानी।[2]

प्राचीन काल में वृक्षों को काटना, नदी का पानी दूषित करना, शुद्धि एवं भूमि शुद्धि निमित्त यज्ञ करना और जीव–जन्तु संरक्षण की धारणा उपलब्ध होती है। वर्तमान काल का मानव निर्दयता से वृक्षों का दहन कर रहा है, नदियों को बाँध रहा है, कारखानों से निकलने वाली जहरीली गैसें वातावरण को दूषित कर रही है। जिसके फलस्वरूप वर्षा का अभाव, सूखा पड़ना, धरती के अन्दर पानी की समाप्ति एवं वायु–प्रदूषण बढ़ता ही जा रहा है। वर्तमान काल और पौराणिक समय में हुये प्रयासों में अनेक समानतायें हैं। पौराणिक युग में भी पर्यावरण–संरक्षण सम्बन्धी मानसिक चिन्तन बनाये रखने के लिये अपने ग्रन्थों में प्रकृति के तत्वों को देवता का रूप देकर उसे शुद्ध रखने के लिये स्तुतियां की हैं। पुराणों में पर्यावरण–संरक्षण की धारणा सम्पूर्ण रूप में उपलब्ध होती है। धर्म, अहिंसा, शांति, पशु–पक्षी एवं वृक्ष–वनस्पति–संरक्षक और यज्ञ की धारणा उपलबध होती है।

धर्म के प्रति धारणा बनाये रखने के विषय में कहा है कि जो मनुष्य काम, क्रोध, लोभ, भव अथवा द्वेष वश परम्परागत धर्म को छोड़ता है उसका कभी मंगल नहीं होता।[3]

अहिंसा के विषय में कहा है कि मानव को सदा अहिंसा में निरत रहना चाहिये। जिस प्रकार मनुष्य को स्वयं पीड़ा होती है, वैसी ही दूसरों को भी पीड़ा का अनुभव होता है, ऐसा जानना चाहिये।[4]

शान्ति के विषय में कहा है कि एक परम अद्भुत सुख का साधन है। शान्ति में पूर्णतया हृदय में रखना एक विशेष पुण्य बताया गया है।[5]

शान्ति दो प्रकार की होती है–एक मन की शान्ति, दूसरी प्रकृति के पंच तत्त्वों की शान्ति। इन पंच तत्त्वों की शांति यज्ञ द्वारा की जाती है। मार्कण्डेय पुराण के अनुसार "यज्ञ के बिना हमारी पृथ्वी, जल, वायु, सूर्य और अग्नि की तृप्ति का कोई अन्य उपाय नहीं है। यज्ञ भाग देकर ही मनुष्य उन्हें शांत करते हैं। जो यज्ञ भाग को स्वयं खा जाते हैं उनके विनाशार्थ यह तत्व दूषित हो जाते हैं।[6]

मत्स्य पुराण में आकाशीय, पृथ्वी–सम्बन्धी महोत्पात आ जाने पर, अतिवृष्टि एवं अनावृष्टि के कुअवसर पर वैष्णवी शांति करने की धारणा उपलब्ध होती है। इसके अतिरिक्त पर्यावरण शुद्ध रखने के लिये नित्य नियम से हवन करने की धारणा उपलब्ध होती है जिसके करने से स्वर्ग की प्राप्ति होती है।[7]

**भूमि संरक्षण**

वर्तमान काल में भूमि–प्रदूषित होने के अनेक कारण हैं। जनसंख्या वृद्धि के कारण उपज में काम आने वाली जमीनें निवास स्थान बन रही हैं। कृषि के उत्पादन और नये–नये कारखानों व मशीनों के प्रयोग बढ़ रहे हैं जिससे भूमि का पर्यावरण प्रदूषित हो रहा है। घरों, बगीचों, खेतों में विषैले कीटनाशकों के उपयोग से वातावरण प्रदूषित हो रहा है।[8]

विज्ञान में प्रगति से शहरी औद्योगिक क्षेत्रों में कूड़ा–करकट पैदा हो रहा है जिससे भूमि दूषित होती है और मनुष्य के स्वास्थ्य पर दूरगामी दुष्प्रभाव पड़ता है।[9]

पूराणों में अपवित्र भूमिभाग की शुद्धि का वर्णन अनेक प्रकार से किया गया है। अपवित्र भूमि की मिट्टी ऊपर से खोदकर अलग कर देने से, भूमि पर काष्ठ, फूस आदि डालकर जला देने से, गोमय लीपने से, धावन और मेघ के द्वारा वृष्टि हो जाने से अमेध्य भूमि की शुद्धि हो जाती है।[10]

**जल संरक्षण**

प्राचीन काल में जल–प्रदूषित करने के कारण नहीं थे क्योंकि जनसंख्या इतनी अधिक नहीं थी, फिर भी अशौच के कारण जल–प्रदूषित हो सकता था इसलिये जल में किसी प्रकार का विकार उत्पन न हो, ऋषि–मुनियों ने मनुष्य द्वारा होने वाले उत्पादों से जल–प्रदूषण एवं संरक्षण के विषय में वर्णन किया है। पुराणों में कहा गया है कि जलाशयों का निर्माण अत्यधिक आनन्द देने वाला होता है। प्रेम के साथ प्याऊ लगाकर जलदान करने का वर्णन मिलता है।[11]

गरूड़ पुराण के अनुसार कुआं, बावड़ी, तालाब आदि का निर्माण करने से इक्कीस कुलों का उद्धार होता है एवं अन्त में विष्णुलोक में प्रतिष्ठित होता है।12

नारद पुराण के अनुसार तालाब, देव अर्पण की हुई बावड़ी को पुण्यकर्म कहा जाता है। इसलिये पुराणों ने कूप, नदी, जलमार्ग में कभी भूलकर भी मल–मूत्र त्याग अथवा मैथुन कार्य को वर्जित किया है।[13]

पुराणों ने कलियुग में गंगा नदी की विशिष्टता का वर्णन करते हुये कहा हैं कि गम्भीर तथा निर्मल जल से भरी हुई गंगा नदी उत्पत्ति के समय हिमवान पर्वत को पवित्र करती है और प्रवेश करते समय समुद्र को पवित्र करती है।[14]

गंगा की लहरों से उत्पन्न हुई वायु के स्पर्श से घोर कल्मषों से छुटकारा पाकर पवित्र आत्मा कभी न क्षीण होने वाले स्वर्ग–निवास को प्राप्त करती है।15

**वायु संरक्षण**

वर्तमान समय में विश्व की बढ़ती जनसंख्या ने वायुमण्डल को दूषित किया है। जनसंख्या वृद्धि से आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु औद्योगीकरण हुआ है। इसके कारण विषैली अथवा अनुपयोगी गैसें वायुमण्डल में एकत्रित होती हैं। इन विषैली गैसों के जमाव अथवा अधिकता को ही वायु प्रदूषण के नाम से जाना जाता है।

वेदों के समान ही पुराणों में भी वायु–प्रदूषण के निवारण के लिये यज्ञ–हवन अत्यन्त सुगम तथा श्रेष्ठ साधन बताया गया है। यज्ञ आकाश और पृथ्वी दोनों को पवित्र करता है। अग्नि में जो अन्न का हवन करता है, वह देव–यज्ञ कहा गया है।[16]

घृत, दूध, लिंग पुराण के अनुसार सूर्य के उदित होने पर हवन करना चाहिये क्योंकि प्रातः काल में सूर्य की किरणों में तेज होता

है। सूर्य की किरणों के धरती पर पड़ने से एवं अग्निहोत्र के धुयें के सम्पर्क से उनका तेज और भी बढ़ जाता है, जिसमें कृमियों का नाश होता है।[17]

वायु प्रदूषण की समस्या को कम करने के लिये कारखानों को जनसंख्या क्षेत्र से दूर स्थापित करना चाहिये। वायु–प्रदूषण से होने वाली हानियों का ज्ञान रेडियो, पत्र–पत्रिकाओं, दूरदर्शन के माध्यम से लोगों को कराना चाहिये। जिससे लोगों में वायु–प्रदूषण को रोकने के लिये जागृति उत्पन्न हो सके।

**वृक्ष संरक्षण**

पौराणिक काल में वृक्ष–वनस्पति संरक्षण एवं संवर्धन की धारणा बनाये रखने के लिये वृक्ष लगने से देवलोकों की प्राप्ति एवं नष्ट–भ्रष्ट पर नरकों के पाप का वर्णन किया गया है। वृक्षारोपण एवं पुष्प–फल और उपवन आदि के निर्माण करने वाले लोक में सुख से निवास करते हैं।[18]

गरूड़पुराण के अनुसार माली जंगल में वृक्षों की जड़ों को बिना नष्ट किये हुये फूलों को चुनता है। शिव के आश्रम में स्थित वृक्ष, बाग या पुष्पों को नष्ट करना उपपातक कहा गया है। पुष्पित उद्यानों को नष्ट–भ्रष्ट करने वाले पापी को इक्कीस युगपर्यन्त कुत्ते खाया करते हैं।[19]

पुराणों में भिन्न–भिन्न प्रकार के वृक्षारोपण से विविध पुण्य फल की प्राप्ति का वर्णन किया है। चम्पक को सौभाग्य देने वाला तथा बकुल को कुलवृद्धि करने वाला माना गया है। पीपल को सहस्र पुत्रों के समान माना गया है।[20]

कल्किपुराण में उल्लेख है कि यज्ञ करने से स्वर्ग मिलता है, किन्तु तालाब–वाटिकाओं के निर्माण से संसार से मुक्ति मिलती है।

वृक्षों की मानव समाज को बड़ी देन है। वे हमारे द्वारा छोड़ी गई अशुद्ध वायु को ग्रहण करते हैं और शुद्ध वायु प्रदान करते हैं। पीपल, तुलसी जैसे पेड़ हमें प्रचुर मात्रा में प्राण वायु देते हैं। नगर के मध्य पेड़–पौधों को नगरों के फेफड़े कहा जाता है। इन्हीं गुणों के कारण वृक्षों की पूजा की जाती रही है। परन्तु वर्तमान काल में वृक्षों को ईंधन भवन–निर्माण कार्य एवं विकास हेतु काटा जा रहा है। जिससे जल का अभाव हो रहा है। अनावृष्टि से कहीं–कहीं हाहाकार हो रहा है। अतः हमारे ऋषि–मुनियों ने वृक्षों की महत्ता पर जो लिखा था, वह सार्थक है।

**वन्य पशु संरक्षण**

पौराणिक काल में जीव–जन्तु संरक्षण के विषय में कहा गया है कि गौहत्या करने वाला पतित कृमिभक्ष नामक नरक में जाता है एवं कीड़ों का भक्षण करता है।[21]

गौओं की राह में आग लगाने वाले एवं वन में निरपराध पशुओं का वध ब्रह्म–हत्या के महापाल के तुल्य बताया है।[22]

पुराणों में गौ, नकुल, मेंढक, काक, विषैले प्राणी, चूहे, कुत्ते की हत्या करने पर भिन्न–भिन्न प्रायश्चित एवं दान देने की धारणा उपलब्ध होती है।

मत्स्यपुराण में उल्लेख है कि महर्षि अत्रि के आश्रम में जीव–जन्तु परस्पर विरूद्ध स्वभाव वाले होकर भी अविरूद्ध स्वभाव वाले थे। महर्षि अत्रि ने उस आश्रम के जीवों की प्रकृति में ऐसा परिवर्तन कर दिया था कि जिसके प्रभाव से माँस खाने वाले जानवर भी दूध तथा फल का आहार करते थे।[23]

मार्कण्डेय पुराण के अनुसार कृमि–कीट, पतंगा, पशु–पक्षी आदि सब ग्रहस्थ आश्रम परजीवन निर्वाह करते हैं।[24]

जो समस्त भूतों पर दया रखने वाले एवं निश्वास करने योग्य हैं तथा जिन्होंने जन्तुओं पर हिंसा का समाचरण करना त्याग दिया, वे मनुष्य स्वर्गलोक में गमन करने वाले होते हैं।[25]

पौराणिक काल में ऋषि–मुनियों ने कलियुग के विषय में जो कुछ वर्णन किया था वह वर्तमान समय में सब घटित हो रहा है जिसका परिणाम हम भोग रहे हैं। वर्तमान समय में पशु–पक्षी की अनेक जातियां लुप्त हो चुकी हैं जिससे पर्यावरण असंतुलित हो सकता है क्योंकि पर्यावरण का सन्तुलन प्रकृति के पंचतत्वों से लेकर जीव–जन्तु, पशु–पक्षी, वृक्ष–वनस्पति से बना रहता है, जो एक–दूसरे पर निर्भर है।

वर्तमान समय में पर्यावरण–संरक्षण की धारणा बल पकड़ रही है और इसकी आवश्यकता भी है। इसमें कोई संदेह नहीं कि बढ़ती जनसंख्या के साथ मनुष्य की आवश्यकतायें भी बढ़ गई हैं परन्तु यह अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है कि उन आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये प्रकृति के सन्तुलन को न बिगाड़ा जाये। संसार की सभी वस्तुयें एवं जीव परोक्ष एवं अपरोक्ष रूप में किसी न किसी तरह से सह–संबंधित है। अतः मनुष्य जीवन और प्रकृति में सामंजस्य रहने से मनुष्य प्रकृति का अंग बन कर रहे और उससे केवल उतना ही ले जितनी उसकी आवश्यकता है। जिस प्रकार शरीर में किसी प्रकार का विकार महसूस होने पर समय पर उपचार किया जाता है, ठीक उसी प्रकार प्रकृति के बिगड़ते संतुलन के कारणों का पता लगाकर प्रभावशाली उपचारात्मक उपाय कर प्राकृतिक सन्तुलन बनाया जा सकता है और पर्यावरण को शुद्ध रखा जा सकता है।

**पी.डी.एफ. (संस्कृत),**
**श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ, दिल्ली**

1. **"ओ३म् द्यौ शान्तिरन्तरिक्षं**
**..... शान्तिरेधि।"**
यजुर्वेद–36 / 17
2. "संस्कृत हिन्दीकोश (वामन शिवराम आप्टे) – पृ. 1046
3. श्रीमद्भागवदत् पुराण–10.11
4. अहिंसानिरताभूपाद्यथत्मनि तथापरे। पद्मपुराण 1.23
5. अग्निपुराण–1.55
6. **"क्रतु भागं दुरात्मनः स्वयंवाश्रतिलोलुपाः।**
**विनाशायवयं ते पांतोयसूर्याग्निमारूताः।।"**
मार्कण्डेय पुराण पृष्ठ 223
7. मत्स्य पुराण – पृष्ठ 627
8. प्रदूषण – पृष्ठ 115
9. प्रदूषण – पृष्ठ 160
10. **"खननाह्वाह्वनाच्चैव उपलेपधावनात्।**
**पर्जन्यवपणाच्चैव भूरमेध्याविशुध्यति।।"**
पद्मपुराण 1,8
11. शिवपुराण – 2–12
12. **"कूपवापीत डागादि.....**
**त्रिसप्तकुल युद्धप्य विष्णुलोके महीयते।"**
गरूड़ पुराण (2.22)
13. पद्मपुराण 2–30
14. आदिपुराण 18–4
15. **"गंगाजलोभिनिधूतपवनं स्तृश्यते यदि।**
**सश्यः कल्मषः द्घोरास्वर्ग चाक्षयमष्नुते।।"**
पद्मपुराण (412–47)

16. **"अग्नौ जुहोति यच्चान्नं देवयज्ञ इति स्मृतः।।"**
लिंग पुराण
17. **"ज्योति सूर्य इति प्रातर्जुहुआदुदितेयतः।"**
लिंग पुराण–35
18. मत्स्यपुराण (59=1–3)
19. नारदपुराण 1,125,126
20. पद्मपुराण, सृष्टि खण्ड–अध्याय–28
21. शिव पुराण 2/12
22. **"गावां मार्गे वने चेश्चैवाग्नि प्रदीयते।"**
शिव पुराण 2/33
23. मत्स्य पुराण 118, 63–64
24. मार्कण्डेय पुराण–5
25. ब्रह्मपुराण–2, 6